

## श्रीअवध की यात्रा

भगवान् श्रीरामचन्द्र की राजधानी श्रीअयोध्या अनुपम नगरी है । यह भूमण्डल का साकेत है । इस नगरी में भगवान् श्रीरामचन्द्र जी का अखण्ड सम्बन्ध है । इस नगरी के ही एक महल में उन अजन्मा का जन्म हुआ । यहीं की धूलि में वे खेले सरयू में स्नान किया, पावन पुलिन पर सखाओं के साथ हास-विलास किया, लता और वृक्षों के नीचे विश्राम किया, चाँदनी में जल विहार किया, धूप में छाया का सेवन किया, पशु-पक्षियों से प्यार किया । इस नगरी के ही आकाश के नीचे चारों भैया वायु-सेवन के लिए टहलते थे । धनुष का अभ्यास करते थे । माँ-बापके लाड़-प्यार, पुरवासियों के दुलार से यहाँ गद्गद् हुए । बाल्य, किशोर और यौवन के अनेकों खेल यहीं खेले । दस हजार वर्षों से भी अधिक इसी अयोध्या के एक छत्र सम्राट रहे । सप्तद्वीपवती पृथ्वी का शासन श्रीअयोध्या ही करती थी । श्रीअयोध्या अप्राकृत है, चिन्मय है, भगवान् का नित्यधाम है । आज भी वही है ।

श्रीभक्तकोकिलजी जब-जब अयोध्या आये, उन्हें यही जान पड़ता था, यह वही श्रीअवधधाम है । यहाँ वही लीला है । वही परिजन, वही पुरजन है । यह कोई दूसरी अयोध्या है, बदल गयी, या अब यहाँ के वे निवासी नहीं है-श्रीस्वामीजी के मन में ऐसा भाव आता ही नहीं था । परन्तु श्रीअयोध्या में आते ही, बल्कि देखते ही उनका भाव बदल जाता था और वे व्याकुल

हो उठते थे । उनके हृदय पर श्रीस्वामिनीजी के द्वितीय वनवास की ऐसी गहरी चोट लगी थी कि श्रीअयोध्या के दर्शनमात्र से वह घाव हरा हो जाता और ऐसा भाव उभर आता था कि इसी अयोध्या की प्रजा ने श्रीस्वामिनी को अपवाद लगाया जिसके कारण उन्हें वनवास का कठिन दुःख भोगना पड़ा । कभी-कभी तो भावावेश में व्याकुल होकर कह उठते-

‘श्रीस्वामिनी जनकनन्दिनी सदा प्राणों से प्यारी है ।

उसी जननी हमारी की अयोध्या शत्रु भारी है ।।’

श्रीभक्तकोकिलजी भक्तों के आग्रह से ही श्रीअयोध्या में जाते थे और वहाँ बड़े संकोच से रहते थे । वे सोचते थे कि रवि-कुलतिलक श्रीरामचन्द्रजू महाराज बड़े ही निरंकुश राजराजेश्वर हैं । उनके तेज प्रताप से त्रिभुवन भयभीत रहकर मर्यादा में चल रहा है । कहीं उनकी राजधानी में कोई भूल न हो जाय । वे समुद्र के समान गम्भीर हैं-रत्नाकर भी, मकराकर भी, पता नहीं उनके हृदय से कब क्या निकले ! श्रीस्वामीजी का स्वभाव था-गरीबों को रोज कुछ-न-कुछ बाँटना, परन्तु श्रीअवध में इस वितरण में भी उन्हें हिचकिचाहट होती थी । उनके मन में यह भाव आता कि दानीशिरोमणि के राज्य में उनके दिये हुए दान से सब भरपूर हैं । कहीं प्रजाजन यह न सोचें कि यह अपना बड़-प्पन दिखाता है । श्रीअयोध्या में उनका व्यवहार बहुत ही संकोच पूर्ण होता था । जब वे श्रीकनकभवन में दर्शन करने जाते तब उन्हें ऐसा जान पड़ता जैसे महाराज रामचन्द्र के पास

श्रीजनकनन्दिनी की स्वर्ण प्रतिमा विराजमान है । यह सोचकर दुःखी हृदय से एक कोने में बैठ जाते । उनके हृदय पर श्री श्रीजू के पुनर्वनवास की छाप इतनी गहरी पड़ गयी थी कि वह किसी तरह भी नहीं मिटती थी । वे बार-बार कराह उठते-“आह ! इस अयोध्या में क्या है, जब मेरी क्षमामूर्ति स्नेहमयी परम पावन श्रीस्वामिनीजी नहीं है ?”

एक दिन श्रीभक्तकोकिलजी श्रीरामलीला का दर्शन करने गये । श्रीअयोध्या से जनकपुर बारात आयी । पिताजी को प्रणाम कर चुकने पर श्रीरामचन्द्र से मिलने के लिये अवधवासी सखा आगे बढ़े । बस, श्रीस्वामीजी वहाँ से चलने के लिए उद्यत हो गये । सेवकों ने सम्पूर्ण लीला देखने की विनय की । श्रीभक्तकोकिलजी ने भावमग्न होकर कहा कि इन कपटी सखाओं का यह बाहरी प्यार मुझे अच्छा नहीं लगता । ये युगलसरकार के गहरे अनुराग को न सहनेवाले ऊपर से मधुर भाषी हैं । बस, श्रीस्वामीजी वहाँ से चले आये ।

श्रीअयोध्या में श्रीस्वामीजी अनेक महात्माओं से मिले । श्रीजानकीघाट के पण्डित श्रीरामवल्लभशरणजी महाराज श्रीभक्तकोकिलजी का बहुत ही आदर करते थे । श्रीस्वामीजी के अत्यन्त नम्र शील स्वभाव को देखकर बहुत ही आल्हादित होते । एक बार भक्तकोकिलजी ने उनसे पूछा-

“भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती । दारुण असम्भवना बीती ॥”

इस चौपाई में दारुण असम्भवना का क्या भाव है ?

उन्होंने कहा-“श्रीरामचन्द्र को विष्णुभगवान् समझना यह असम्भावना है और उनको मनुष्य समझना यह दारुण असम्भावना है ।” ज्ञान और भक्ति रस की चर्चा चलने पर श्रीपण्डित ने कहा-“ज्ञानी उस चींटी तरह है जो मिश्री के साथ रगड़कर मिश्री से मिल गयी हैं । उसका अपना कोई बाह्य अस्तित्व नहीं रहा और भक्त उस मिश्री के पहाड़ पर घूमता, स्वाद लेता और प्रभु की आराधना में सावधान रहता है ।”

श्रीलक्ष्मणकिला के महात्मा श्रीरामदेवशरणजी द्वारा स्वामिनी श्रीजनकनन्दिनी की नाम महिमा का प्रसंग चला । उन्होंने कहा-‘श्रीरामचन्द्र से भी अधिक श्रीकिशोरीजी के नाम की महिमा है । एक बार सर्दी के दिनों में कोई मनुष्य सरयू में स्नान कर रहा था । ठण्ड के कारण सी-सी करके बेचारे के प्राण पखेरू उड़ गये । कृपामूर्ति श्रीस्वामिनीजी ने अपनी सहचरियों से कहा कि यह तो मेरा नाम ले रहा है । इनको मेरे धाम में ले आओ । ऐसा कृपालु स्वभाव हमारी श्रीस्वामिनीजी का है ।’ श्रीभक्तकोकिलजी इसी प्रकार और महात्माओं से भी जाकर सत्संग करते थे ।

एक दिन श्रीस्वामीजी को वहाँ ऐसे दो सुनहले पक्षियों के दर्शन हुए जो स्पष्ट से ‘श्रीसीयाराम’ ‘सीयाराम’ बोलते थे । श्रीस्वामीजी के प्रेमपूर्ण आवाहन से वे समीप आकर मधुर-मधुर नामोच्चारण करने लगे । लक्ष्मणकिले के मन्दिर में एक बोलती

मैना थी वह श्रीयुगलनाम जपती थी । जन्मोत्सव के दिनों में वह श्रीस्वामीजी से ‘बधाई है’ ‘बधाई है’ ऐसा कहती थी । जन्मोत्सव होने के बाद श्रीस्वामीजी ने कहा-‘बधाई है ।’ वह बोली- ‘बधाई हो गयी महाराज ।’ श्रीस्वामीजी प्रसन्न होकर सेवकों से बोले-‘ यही तो धाम की महिमा है । यहाँ मनुष्य तो मनुष्य, पशु-पक्षी भी प्रभु का नाम जपते हैं । देखो प्रभु की लीला, प्रत्यक्ष दिखा रहे हैं कि मेरे धाम में सब भक्त रहते हैं ।’

श्रीभक्तकोकिलजी सेवकों के बहुत आग्रह करने पर चार छः दिनों के विचार से ही श्रीअवध की यात्रा करते थे; परन्तु वहाँ जाने पर कोई न कोई ऐसा कारण बन जाता था कि जिससे महीने दो महीने रहना पड़े । भक्त लोग यह सोचते कि श्रीस्वामिनी जी के चरणकमलों के प्रेमी होने के कारण श्रीअवध सरकार राघवेन्द्र इन्हें जबरदस्ती रोक लेते हैं ।

श्रीस्वामीजी कभी-कभी किसी भक्त की पीठ पर चढ़कर विनोद करते थे । एक बार किसी सेवक ने पूछा-‘स्वामीजी कहाँ जा रहे हैं ?’ वे बोले-‘श्री बरसाने ।’

एक दिन श्रीभक्तकोकिलजी कनकभवन के एक कोने में बैठे हुए थे । पुजारी ने अपने आप ही लाकर प्रसाद की माला पहिना दी । श्रीभक्तकोकिलजी ने कहा-‘चलो भाई, अब यहाँ से जाने की आज्ञा मिल गयी और उसी समय वहाँ से रवाना हो गये । दूसरे दिन मिलने के लिए बहुत से लोग आने वाले थे । इस बात की कोई परवाह न की ।